International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 6.924 Volume 9, Issue 09, September 2022
Website- www.aarf.asia, Email : editoraarf@gmail.com

कबीर दास जी की भक्ति में सामाजिक चेतना एवं उनकी सृजनशीलता की प्रासंगकता का अध्ययन

[1]महतोलक्ष्मी खेमलाल, [2]डॉ संजय कुमार
[1]शोध प्रज्ञ, डिपार्टमेंट ऑफ हिन्दी, वाई बी एन यूनिवर्सिटी, रांची, झारखंड
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर, हेड ऑफ हिन्दी, वाई बी एन यूनिवर्सिटी, रांची, झारखंड

सारांश

हर युग का साहित्य अपने समय के समाज से प्रभावत होता है। साहित्य या आध्यात्मिक चेतना के लए समाज-निरपेक्ष होना संभव नहीं है। कबीर की आध्यात्मिक चेतना अथवा उनकी भक्ति की वशेषता यही है क यह समाज से जुड़ी हुई है। उनकी भक्ति में सामान्य गृहस्थों के लए भी स्थान है तथा यह भौतिक जगत की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं करती है। उनकी कवता भी इसी कारण से वशिष्ट है। कबीर की कवता निरीह-शोषत जनता के साथ खड़ी होती है, उनका स्वर बनती है तथा शोषक सामंत वर्ग का ज़ोरदार ढंग से वरोध भी करती है। कबीर की कवता अथवा उनकी भक्ति या साधना-पद्धति की सामाजिक प्रासंगकता पर वचार करने के क्रम में इस बात पर भी वचार करना होगा | कबीर मध्ययुगीन संत कव है। मध्य-युग हिंदी साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण काल रहा है। मध्ययुग का पूर्वार्द्ध जहाँ भक्ति आंदोलन का काल रहा है वहीँ इसका उत्तरार्द्ध घोर भौतिकवादी मान्यताओं वालें रीतिग्रंथकारों का भी काल रहा है। भारत में मध्ययुग सामाजिक उत्तल-पुथल का काल रहा है। शोषक सामंत, निर्धनों और निम्नवर्ग का शोषण कर रहें थें। निम्नवर्ग अथवा स्पष्ट कहें तो निचली जातियाँ एक ओर तो तो सामंती उत्पीड़न से बेहाल थीं तथा दूसरी ओर सामाजिक भेद-भाव से से त्रस्त थीं। जाति-पाति का भेद-भाव अपने चरम पर था। मानवीय मूल्यों का ह्रास होता जा रहा था तथा पाखण्ड और आडम्बर की जड़े तेजी से फैलती जा रहीं थी। कबीर का जन्म ऐसे ही समय में हुआ था।

मुख्य शब्द: संत कबीर, आधुनिक परिप्रेक्ष्य, भक्ति की प्रासंगकता

© **Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

प्रस्तावना:

संत साहित्य में अपभ्रंश व सद्ध, जन साहित्य, नाथ पंथ और वैष्णव भक्ति आंदोलनों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। संत नामदेव, गुरूनानक महाराज, दादूदयाल, सुंदरदास, रज्जबदास, मलूकदास, सहजोबाई इत्यादि का संत साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान रहा है। परंतु इसमें कोई दो राय नहीं क संत धारा साहित्य में कबीरदास अ ग्रम अ धकारी रहे हैं। हिंदी संत काव्य की दृढ़ नीव रखने वाले कबीरदास हुए हैं। कबीरदास के साहित्य का मुख्य उद्देश्य कर्मकांड की वसंगतियों को दूर कर समतामूलक समाज की स्थापना करना रहा। कबीरदास एक संतक व होने के साथ ही एक समाज सुधारक की भू मका में भी थे और जाति वहीन समाज व नारी अ धकारों के सचेतक थे।

संत साहित्य का प्राण तत्त्व है-लोक धर्म। सत रुपी परम तत्व का साक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति को संत कहा जाता है। डॉ. पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने संत का संबंध 'शांत'से माना है और इसका अर्थ निरू पत कया है – निवृत्ति मार्गी या वैरागी। सामान्यत: सदाचार के लक्षणों से युक्त व्यक्ति को संत कहा जाता है। जो आत्मोन्नति एवं लोकमंगल में रत हो। इस अर्थ में अगर देखें तो 'कबीरदास' भक्तिकाल के महान क व, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास कया। आज की वचाराधारात्मक उठा-पठक और सामाजिक समस्याओं के बीच अनेक बार कबीर की बानियों के हवाले दिए जाते है। उनकी उक्तियों की सार्थकता बतायी जाती हैं। आज भी हिंदू समाज की सवर्ण या द लत समस्याओं या मुस्लिम क रपंथी समस्याओं से लड़ने हेतु कबीरदास अक्सर याद कए जाते हैं।

'कबीर' भक्तिकाल के महान क व, समाज सुधारक थे; जिन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा तत्कालीन समाज को एक नई दिशा देने का प्रयास कया। यह कबीर के साहित्य की ही देन है क इतने वर्षों बाद भी हम उनकी रचनाओं में अपनी समस्याओं का हल देखते हैं। कबीर के साहित्य की प्रासं गकता दो दृष्टियों से है:-

• प्रथमत: साहित्य चाहे कसी भी काल का हो यदि वह वास्त वक साहित्य है तो सदा प्रासं गक रहेगा। पठनीय रहेगा।

• द् वतीयत: उसका कथ्य, संदेश हैं। कबीर ने अपनी रचनाओं के द्वारा एक कथ्य और संदेश देने का प्रयास कया जो आज भी प्रासं गक है और इन्हीं कथ्य, संदेशों के द्वारा कबीर प्रासं गक है।

कबीरदास की रचनाओं पर बीती आधी सदी में आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं हजारी प्रसाद द् ववेदी ने 'कबीर' तथा नामवर संह ने 'दूसरी परंपरा की खोज' नामक पुस्तक में कबीर की पुन: प्रतिष्ठा में काफी कुछ लखा है। इससे पूर्व भी कबीरदास जी के ऊपर क वगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचना 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर', जिसमें संत कबीरदास जी के दोहे का अंग्रेजी अनुवाद है। 'वन हंड्रेड पोयम्स ऑफ कबीर' अपने पहले संस्करण के समय से ही लगातार छप रही है तथा इसने पश्चिम में कबीर की लोक प्रय छ व स्था पत करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। वर्ष **1910** में ही जब टैगोर अंग्रेजी में लख रहे थे, तब उन्होंने कबीर को एक उदाहरण के तौर पर इस्तेमाल कया क कैसे भारतीय अध्यात्म ने समुदायों के बीच वभाजन को पाटने का कार्य कया और कबीर, नानक और चैतन्य जैसे आध्यात्मिक गुरुओं ने अपने-अपने समुदायों और ईश्वर के बीच परस्पर संबंधों का संदेश दिया।

व्यक्ति और पर-ब्रह्म के बीच संबंधों पर बात करते हुए टैगोर अक्सर कबीर की ही सहायता लेते है। अपनी रचना 'पर्सनेलटी' में, जो क **1917** में अमेरिका में उनके व्याख्यान पर आधारित एक कताब है, वह जिक्र करते हैं क कैसे 'इंसान को एक से दूसरे के साथ सीधे संवाद के लए जाना जाता है।' वह संवाद रुप और बदलावों की दुनिया में नहीं, दिक् और काल के वस्तार में भी नहीं, बल्कि यह संवाद चेतना के उस अंतरतम अकेलेपन में होता है, जो क बेहद गहन और तीव्र होते हैं।

इसके बाद उन्होंने इस वचार को पुष्ट करने के लए कबीर के अपने संकलन में से **76**वें दोहे को उद्धृत कया। भारत के संबंध में अक्सर कबीर का उल्लेख करते हैं। जैसे अपनी कताब नेशन लज्म**(1916)** में वह यह चर्चा करते हैं क कैसे भारत में सांप्रदायिक सौहार्द स्था पत हुआ और फर अपने वचार के समर्थन में नानक, कबीर और चैतन्य को उद्धृत करते हैं।

कबीर में टैगोर की दिलचस्पी उनके सहयोगी क्षतिमोहन सेन **(1880-1960)** से भी प्रभा वत थी। अपनी रचना 'इं डयन मस्टि सज्म' में उन्होंने वस्तार से बताया है क जब वह **1908** में शांतिनिकेतन पहुँचे, तब वह कबीर के पदों पर काम कर रहे थे और जब टैगोर को यह मालूम हुआ, तो उन्होंने इसे प्रका शत करने के लए उनको प्रोत्साहित कया। **1910** और **1911** में उन्होंने चार पर्चे छपवाए, जिसमें एक सं क्षप्त परिचय, बांग्ला ल प में हिंदी के पदों तथा बांग्ला में उन पदों की वस्तारपूर्वक व्याख्या थी। टैगोर कबीर को भारत की धा र्मक एकता का उदाहरण मानते थे, इस बात को और क्षतिबाबू के कबीर पर कए गए काम को देखें तो यह समझ में आता है क कबीर का अनुवाद उनके लए कतना महत्वपूर्ण था।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

कबीर मूलत: आध्यात्मिक व्यक्ति थे, भक्त थे, संत थे। वे 'मन' को जीतने के लए संतों और भक्तों को प्रेरित करते रहते थे। कबीर का सारा का सारा संघर्ष आसक्ति और तृष्णा के वरूद्ध था। यही बात उन्हें सामाजिक दृष्टि से प्रासं गक बनाती है। आचार्य हजारी प्रसाद द् ववेदी कबीर को समाज-सुधारक नहीं मानते है। उनके अनुसार कबीर पहले क व थे,समाज सुधारक बाद में। समाज-सुधारक न मानने के पीछे आचार्य जी के जो भी तर्क हों,इतना अवश्य है क कबीर के वचार समाज की चक्की में पस- पस कर ही इतने सूक्ष्म बने थे। हो सकता हैं समाज-सुधार, उनका मुख्य उद्देश्य न रहा हो, ले कन जिस समाज के बा शंदों को वह संबो धत करते थे, वे समाज में हा शए पर पड़े हुए लोग थे। चतुर सामाजिक जन सारी मलाई खुद मार ले जाते थे और छाछ अबोधों के लए छोड़ जाते थे। कबीर की सारी लड़ाई इसी अन्याय के खलाफ थी। क वता के माध्यम से कबीर की समाज की बुराईयों पर जो चोट करते हैं, वह समाज-सुधार का ही तो हिस्सा है। समाज-सुधार और क्या होता है?

कबीर की भक्ति की सामाजिक चेतना

कबीर हिंदी के मूर्धन्य क वयों में हैं। उनकी रचनायें हिंदी-क्षेत्रा के बाहर भी लगभग समूचे देख में लोक प्रय हैं। कबीर की गणना हिंदी साहित्य के निगर्ुणधारा की ज्ञानाश्रयी उपधारा के क वयों में होती है। कबीर हिंदी के प्रखरतम क व हैं। उनकी रचनाएँ निरक्षर, साक्षर और सु श क्षतµसभी लोगों के बीच लोक- प्रय है।

परिचयµ उनका मुख्य स्वर वद्रोह का है, यध प कबीर मूल्यहीन वद्रोही नहीं है। वे संत क व हैं। संत क व सदाचरण पर अत्य धक बल देते थे। उन्होंने वर्णाश्रम-व्यवस्था पर तीव्र प्रहार करके मनुष्य की उच्चता और नीचता का मानदण्ड आचरण को माना, वर्ण को नहीं। पं. रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, 'अ श क्षत और निम्न श्रेणी की जनता पर इन संत-महात्माओं का बड़ा भारी उपकार है।

कबीर के पदों की भाषा सरल है। कंतु कबीर ने सरल भाषा में गंभीर अर्थ अ भव्यक्त कया है। वशेषत: उलटबाँसी शैली में र चत पद अपेक्षाÑत दुरूह है। कबीर ने पदों में अन्तस्साधनात्मक अनुभूतियाँ प्रकट की हैं। इसके लए उन्होंने हठयोग की पारिभा षक शब्दावली का प्रयोग कया है। यहाँ उदाहरण के लए दो पदों पर वचार कया जा रहा है।

जिअत न मारि मुवा मति लावै।
मांस वहूना घरि मति आवै हो कंता।
उर बिनु खुर बिनु चंचु बिनु बपु बिहूनां सोई रे।

© Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

सो सावज कन मानै कंता जाकै रगत मास ना होई रे।
पैली पार कै परघीं ताकी घनुहीं पनच नहीं रे
ता बेली कौ ढूक्यौ म्रगलौ ता म्रग कै सीस नहीं रे
मार भ्रगा जीवता राखा यहु गुर ग्यांन सही रे
कहै कबीर स्वांमी तुम्हरै मलन कों बेली है पर पात नहीं रे।

इस पद का अर्थ समझने के लए आवश्यक है क हम इसमें प्रयुक्त कतिपय शब्दों का अन्योत्तिपरक अर्थ जान लें। यहाँ सम्बो धत 'कंता साधक है। 'मांस मन की चंचल वृत्तियों को नष्ट कर पाने की सफलता है। जो जी वत है उसे न मारना आध्यातिमक दृ षट से ब्रह्माेन्मुख वृत्ति को न मारना है; 'मुवा अर्थात आध्यातिमक दृ षट से निर्जीव से कोई प्रयोजन नहीं। अत: उसे न लाने की बात कही गई है। शकार मन का करना है, उसकी चंचल वृत्तियों को नष्ट करके उसे वशीभूत करना है। वही मन 'सावज (श्वापद) पशु या म्रगला (मृग-शावक) है। इस मन-मृग के उर, खुर, चंचु, वपु कुछ नहीं होता। इस 'सावज के न रक्त है, न मांस। इसे 'परली पार या उस पार का अलौ कक ज्ञानीरूपी शकार (पारधी) ही मार सकता है, जिसके पास न धनुष है न प्रत्यंचा। इस मन मृग के पास 'सीस नहीं अर्थात वह ववेक-हीन है। इसी लए वह 'बेली अर्थात शरीर-सुख, या शारीरिकता पर 'ढुका है, शारीरिकता में लप्त है। ले कन साधक इस मन-मृग को मारकर भी जी वत रखता है। उसे सांसारिक दृ षट से 'मृत करके पारमार्‌ थक दृ षट से जी वत कर देता है। यही सच्चा गुरु-ज्ञान है। कबीरदास ब्रह्म को सम्बो धत करते हुए कहते हैं क स्वामी! अब साधक तुमस मलन के लए प्रस्तुत है। उसका शरीर (बेली) अवश्य है, कंतु (मनो वकार) नष्ट हो गए हैं। अब यह सहज समा ध प्राप्त कर सकता है। शकारी और शकार के इस रूपक के द्वारा कबीर ने अपनी साधना-पद्धति को प्रकट कया है।

इसी प्रकार एक अन्य दुरूह पद पर वचार करें। पद इस प्रकार हैं-
मोहि अैसे वनिज सौं कबनु काज। जिहि घटै मूल नित बंढै ब्याजु।
नाइकु एकु वनिजारै पाँचु। बरध पचीस क संगु काँचु।
नउ बहियाँ दस गौनि आहि। कसनि बहत्तरि ला ग ताहि।
सात सूत म ल बनिज कीन। करम भाँवनी (री?) सं ग लीन।
तीनि जगाती करत रारि। चलौ बनिजारा हाथ झारि।
बनिज खुटांनीं पूंजी टूटि। दह दि स टाँडौ गयौ फूटि।
कहै कबीर यहु जन म वांदि। सहज समांनौ रही लादि।

© **Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

इस पद में कबीर ने अपने समकालीन समाज में प्रच लत व्यापार का रूपक बाँधा है। उस समय एक नगर से दूसरे नगर में व्यापारी माल लादकर ले जाते थे और गहरा मुनाफा कमाते थे। बैलगा ड़यों पर माल लाद कर ले जाया जाता था। इन व्यापार-यात्राओं का एक प्रमुख होता था। नगर की सीमा पर चुंगी देनी पड़ती थी। इस व्यापार-यात्रा के समूह को 'टांडा कहते थे। (सम्भवत: ऐसे समूह के एक पड़ाव होने के कारण फैजाबाद जिले में एक कस्बे का नाम 'टांडा पड़ गया है।) ऐसे व्यापार में सदैव लाभ ही नहीं होता था। कभी-कभी हानि भी उठानी पड़ती थी। कबीर ने इस व्यापार-पद्धति के ढाँचे में अपनी साधना-पद्धति को रूपकबद्ध कया है।

कबीरदास कहते है क मुझे ऐसे वा णज्य से कुछ लेना-देना नहीं जिसमें मूलधन नित्य घटता जाता है और ब्याज निरंतर बढ़ता जाता है। मूलधन अर्थात जीवन निरंतर क्षीण होता जा रहा है और सांसारिक जंजाल-रूपी ब्याज नित्यप्रति बढ़ता जाता है। इस व्यापार का एक नायक है। नायक अर्थात जीव। इसमें बनजारे या व्यापारी हैं। ये बनजारे पाँच महाभूत (पृथ्वी, जल, अ गन, वायु, आकाश) हैं। इसमें पचीस बैलो का कच्चा, अ सथर साथ है। पचीस बैलों का अर्थ साधना-पक्ष में पचीस प्रÑतियाँ हैं। इसमें नौ बहियाँ या बाँस की खपा चयाँ हैं। बाँस की नौ खपा चयों या 'बहियों का आशय इस पद में नौ ना ड़यों से है। इस व्यापार-यात्रा में दस 'गोनि है। गोनि दो मुँह के थैले को कहते हैं। इस प्रकार यह थैला लेकर प्राचीन काल के लोग यात्रा पर निकलते थे। दस इनिद्रयोंµ पाँच कर्मेनिद्रयों और पाँच ज्ञानेनिद्रयों को ही इस पद में दस 'गोनि या दो-मुहां थैला कहा गया है। दो इनिद्रयों को दो-मुहाँ थैले कहना सा भप्राय है, क्यों क इनिद्रयाँ अंतमर्ुखी भी हो सकती हैं और बाáोन्मुखी भी जिसमें कसने के लए बहत्तर 'कसनि या र ससयां लगी हुई हैं। बहत्तर कसनियों या र ससयों का तात्पर्य साधना-पक्ष में शरीर की बहत्तर ग्रनिथयों से है। यह व्यापार सात सूतों या सौदों का कया गया है। इस पद में कबीर ने सात सौदों से शरीर की सात धातुओं रक्त, मांस, मज्जा, वसा, अ सथ, शुक्र, रस प्रकट कया है। इस व्यापार-यात्रा में कर्म या प्रारब्ध की भाँवरी है अर्थात कर्मों के अनुसार मनुष्य को नाना योनियों में चक्कर लगाना पड़ता है। यहाँ तीन जगाती चुंगी वसूल करने वाले हैं। ये जगाती सत्व, रज, तम तीन गुण हैं। ले कन इस व्यापार-यात्रा का अंत कहाँ होता है! अन्तत: पाँचों बनजारे हाथ झाड़कर चल देते हैंµ पांचों भूत अलग-अलग तत्त्व में मल जाते हैं। इस प्रकार जीव-रूपी व्यापार का मूल 'आयु ही नष्ट हो जाती है और यह व्यापार समूह या टांडा दसों दिशाओं में बिखर जाता है। कबीर दास के अनुसार इस प्रकार यह जीवन असफल और निरर्थक हो जाता है। कबीर इस प्रकार के व्यापार में नहीं प्रवृत्त होते। वे तो उ चत सौदे को लादकर सहज समा ध में लीन हो जाते हैं।

कबीर की भक्ति की प्रासं गकता

कबीर निम्न तबके के जुलाहे थें। उन्होंने सामाजिक भेद-भाव का वष-दंश झेल था। जाति प्रथा पर आधारित जन्मगत श्रेष्ठता का प्रचलन तथा श्रेष्ठ गुणों का तिरस्कार आदि उन्होंने स्वयं देखा था। कबीर को ये भेद-भाव स्वीकार नहीं थें। अतः उन्होंने व्यक्ति को जन्म के आधार पर नहीं, कर्मों और गुणों के आधार पर श्रेष्ठ माना है।-

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।

मोल करों तलवार की पड़ी रहन दो म्यान॥"

कबीर निर्गुण भक्ति और शंकर के अद्वैत को अपनाया। इन दोनों के लए ही काफी उच्च ज्ञान तथा बौ द्धकता अनिवार्य है। कबीर न तो ब्राह्मण थें और नहीं पर्याप्त रूप से श क्षत ही थें, फर उन्होंने ऐसा मत क्यों चुना?

कबीर उच्च कोटि के मानवतावादी संत थें। प्रारम्भ में बड़े सरल और भावुक रहे होंगे। उनकी सरलता उनमें बची रही, बाद में उनकी अक्खड़ता-फक्कड़ता के रूप में स्थान्तरित हो गई, क्यों क जो सरल होता है वही बेबाक होता है; परन्तु उनकी भावुकता के साथ क्या हुआ? अपने हिंदी साहित्य के इतिहास स्वयं आचार्य शुक्ल लखते है की रामानंद जी के प्रभाव के कारण उन्हें हिन्दू रीति-रिवाज आक र्षत करते थें- "वे राम-राम जपा करते और कभी-कभी माथे पर तिलक भी लगा लेते थें।"

यह संभव है क बाल्यावस्था में सगुण भक्ति की ओर इनकी रु च रही हो परन्तु यदि ऐसा था तो इन्होंने निर्गुण भक्ति क्यों स्वीकार की? रामानंद जी स्वयं सगुणोपासक थे एवं सगुन रामोपासना का उपदेश देते थे।

गंगा तट वाली घटना में भी उन्होंने कबीर से यही कहा था क 'राम-राम बोल'। उनके इस राम का आशय सगुन राम से था, फर कबीर की गुरु भक्ति की भावना भी वख्यात है-

"गुरु गो वन्द दोऊ खड़े, काके लागू पाय।

ब लहारी गुरु आपनै, गो वन्द दियो बताय॥"

"यह तन वष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।"

आ खर क्या कारण था क रामानंद जी के मन्त्र को भी कबीर ने अपनी मान्यता के अनुसार परिवर्तित करके ही स्वीकार कया? यदि यह संभव है की कबीर सगुन भक्ति तथा हिंदू रीति-रिवाजों(भक्ति की पद्धति) के प्रति आक र्षत थे, तब यह भी संभव है क उनके कार्यों का यथा नाम जप तथा तिलक लेपन आदि का वरोध हुआ हो। हिंदू-मुस्लिम दोनों ने इसका वरोध कया

होगा। बालक कबीर पर इसका क्या प्रभाव पड़ा होगा? हिन्दू मुस्लिम, ऊँच-नीच का भेद-भाव, छूआ-छूत इन सबने कबीर को अंदर से झकझोर दिया।कबीर की भावुकता दब गई तथा उनके स्थान पर भेद-भाव के वरोध के लए आवश्यक जुझारूपन उनके अंदर वक सत हुआ। सगुण भक्ति को स्वीकार न करने के दो प्रमुख कारण हो सकते हैं। प्रथम और सर्वा धक महत्वपूर्ण कारण यह की सगुण भक्ति चाहे-अनचाहे ब्राह्मणवादी पौरा णकता, सामंती रुढ़िओं और भेद-भाव का पोषण करती है। मानव-मानव में समानता की जो भावना कबीर चाहतें थे, वह सगुण भक्ति में संभव नहीं थी। दूसरा कारण मेरे अनुसार कहीं न कहीं यह भी हो सकता है क इस्ला मक संस्कारों और मान्यताओं के अनुसार सगुण भक्ति इनके अनुकूल न थी। कबीर मानव मात्र से प्रेम से प्रेम करते थे। इनके लए सब सामान है, कोई भेद नहीं है। न कोई राजा है, न कोई रंक है, न कोई पं डत है, न कोई मुर्ख, न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र; सभी उसी परमब्रह्म के अंश हैं, सभी ब्रह्म हैं।

शंकर के अद्वैत को स्वीकार करने के पीछे इनका यह मानव मात्र के प्रति प्रेम तथा उनकी समदृष्टि ही कारण था। इस प्रकार इनकी भक्ति साधना और इनके दार्शनिक वचार सब समाज के द्वारा ही उत्प्रेरित थें। कबीर एक भक्त के साथ ही समाज सुधारक के रूप में भी प्र सद्ध हैं। समाज सुधार के उनके कार्य या उनकी क वता की सामाजिकता का अध्ययन हम निम्नां कत बिन्दुओं के अंतर्गत करेंगे।

निष्कर्ष-

वस्तुत: कबीर सामाजिक मूल्यों का वरोध करते समय सर्वनिषेधात्मक मुद्रा कभी नहीं अपनाते। वे बुराइयों की निन्दा करते हैं ले कन साधना और सामाजिकता को नए मूल्य प्रदान करते हैं। कबीर हठयोग की साधना, वैष्णव मत, इस्लाम तथा अपने समय में प्रच लत नाना प्रकार की साधनाओं से परि चत थे। उन्होंने सबकी त्रा ुटियों की आलोचना की, कन्तु उनका सारतत्त्व ग्रहण कया। कबीर भक्त थे। भ कत âदय की साधना है। इस âदय-साधना वे+ चलते वे शुष्क ज्ञान-साधना से आगे बढ़कर जगत से भावात्मक सम्बन्ध जोड़ सवे+ थे। इस भाव-साधना ने उन्हें समस्त सृ षट वे+ साथ जोड़ा था और मानव-समाज की वषमताओं से पी ़डत होने और समाज को उबारने की छटपटाहट भी प्रदान की थी। कबीर की सामाजिक चेतना उनकी इस भाव-साधना का ही एक पक्ष है। उनकी सामाजिक चेतना उनकी परमार्थ चेतना में घुली- मली है। संत कबीर के वचार दीर्घकालीन भारतीय चंतन शृंखला की कड़ी के रूप में सामने आते हैं। कबीर के वचार उपनिषदों, भगवान बुद्ध की मान्यताओं, शंकर के वचारों और मध्कालीन

सद्धों की शक्षाओं के सार हैं। कबीर की साधना पद्धति, उनकी भक्ति और उनके सामाज सुधार के वचार उस समय भी महत्वपूर्ण थें तथा आज भी महत्वपूर्ण हैं। आज भी तमाम ऐसे उपकरण हैं, ऐसे व्यर्थ के कार्य हैं जिनका मानव के जीवन में कोई महत्व नहीं है, परन्तु मानव है क अपने जरूरी कार्यों को छोड़ कर उन व्यर्थ के कामों में लगा रहता है। ये कार्य, ये उपकरण और कुछ नहीं माया ही है। हमें इनके बीच ठीक वैसे ही रहना होगा जैसे कबीर घर-गृहस्थी में होने के बाद भी वरक्त हो कर जीते थे। 'उपयोग उतना ही होना चाहिए जितना अनिवार्य हो अ धक की लालसा व्यर्थ है', आज के भौतिकवादी वश्व में कबीर के ये वचार और भी अ धक महत्वपूर्ण हो गए हैं। समदृष्टि की जो बात कबीर ने कही थी, उन्होंने जो मानव-मानव के बीच अभेद्य की बात कही थी वह आज के समय में प्रासं गक है।

कबीर के उपदेशों को आज फर से उभारने की जरुरत हैं। समाज में समत्व की भावना लाने की जरुरत है। छूआ-छूत, ऊँच-नीच की भावना को एक श क्षत समाज का गुण-तत्त्व नहीं माना जा सकता। इस सामाजिक बुराई को हटाने की जरुरत है। धा र्मक बुराई, यथा तीर्थ-स्थान, कुर्बानी, श्राद्ध, मूर्तिपूजा, मुस्लिम धर्म में कुर्बानी, हलाल, सुन्नत इत्यादि को वे गलत मानते थे। यदि वास्तव में साम्यवाद लाना है तो कबीर की दृष्टि रखनी होगी। साथ ही धा र्मक तटस्थता भी रखनी होगी। कबीर की दृष्टि तो मार्क्स से भी पुरानी थी। उनकी यह समद र्शता ही थी। इसी कारण, वे धन जोड़ने को गलत मानते थे। वे कर्मवाद के प्रबल समर्थक थे। बिना कर्म कए पाप धुलता नहीं। इस प्रकार सर्व-धर्म समभाव, वश्व में सभी के प्रति समदृष्टि, अपरिग्रह, कर्मयोग,तथा दया आदि मानवीय गुणों पर उन्होंने बल दिया। इसी कारण वे मानवतावादी क व माने जाते है। और इन्हीं कारणों से वे सर्वा धक प्रासं गक है और रहेंगे।

संदर्भ ग्रन्थ सूची:

1. कबीर: हजारी प्रसाद द् ववेदी, पृ. **145**
2. कबीर समग्र: (सं.) युगेश्वर, पृ. **406**
3. कबीर साहित्य और सद्धान्तः यज्ञदत्त शर्मा, पृ. **122**
4. कबीर समग्र: (सं.) युगेश्वर, पृ. **724**
5. हिन्दी साहित्य की दार्शनिक पृष्ठभू म: वश्वम्भरनाथ उपाध्याय, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा, पृ. **346**

6. कबीर समग्र**:** **(**सं**.)** युगेश्वर, पृ**. 443**
7. वही, पृ**. 444**
8. वही, पृ**. 442**
9. वही, पृ**. 441**
1**0.** वही, पृ**. 463**
1**1.** वही, पृ**. 245**
1**2.** वही, पृ**. 396**
1**3.** वही, पृ**. 470**
1**4.** वही, पृ**. 470**
1**5.** कबीर**:** हजारी प्रसाद द् ववेदी, पृ**. 242**
16. इग्नू स्नातकोत्तर अध्ययन सामग्री
17. से मनार से साभार, अनुवाद**:** प्रवीण प्रभाकर, दैनिक हिंदुस्तान, 02 मई, 2015
18. इंटरनेट एवं व भन्न अध्ययन सामग्री

© **Association of Academic Researchers and Faculties (AARF)**